Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-2(A)| February - 2026

Original Article

नैतिक अर्थशास्त्र और सतत उपभोगः विश्लेषणात्मक अध्ययन (जे.के.मेहता के अभावहीनता सिद्धांत के विशेष संदर्भ में)

वीरेन्द्र सिह गुर्जर[1], डॉ. दिलीप पीपाड़ा[2]

[1]सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय महाविद्यालय सिरोही

[2]सह-आचार्य अर्थशास्त्र विभाग, सेठ मथुरादास बिनानी राजकीय स्नातकोत्तर, महाविद्यालय नाथद्वारा राजसंमद राजस्थान

Email: gurjarvirendra99@gmail.com

Manuscript ID:
JRD -2026-180228
ISSN: 2230-9578
Volume 18
Issue 2(A)
Pp. 143-147
February - 2026
Submitted: 17 Jan. 2026
Revised: 27 Jan. 2026
Accepted: 12 Feb. 2026
Published: 28 Feb. 2026

सारांश

यह शोध–पत्र समकालीन आर्थिक चुनौतियों के समाधान के रूप में नैतिक अर्थशास्त्र और सतत उपभोग की अवधारणा का विश्लेषण करता है । आधुनिक अर्थशास्त्र सीमित साधनों से असीमित आवश्यकताओं की अधिकतम संतुष्टि पर आधारित है। जिससे संसाधनों का दोहन बढ़ता है और भावनात्मक व आवेगात्मक खरीद को प्रोत्साहन मिलता है। कई बार व्यक्ति आवश्यकता न होने पर भी दूसरों को देखकर या बाजार में ऑफर के प्रभाव में वस्तु खरीद लेता है, जिसे भावनात्मक या आवेगात्मक खरीद कहा जाता है। वर्तमान बाजार व्यवस्था में कंपनियाँ उपभोक्ता की भावनाओं और आवेग को लक्ष्य बनाकर रणनीतियाँ तैयार करती हैं, जिससे अनावश्यक उपभोग बढ़ता है।

इसके विपरीत भारतीय आर्थिक चिंतक प्रोफेसर जे.के.मेहता अभावहीनता के सिद्धांत पर बल देते हैं। उनके अनुसार वास्तविक सुख आवश्यकताओं को बढ़ाने में नहीं बल्कि उन्हें सीमित कर मानसिक संतोष प्राप्त करने में निहित है। अतः सतत उपभोग का उद्देश्य केवल संसाधनों का संरक्षण नहीं, बल्कि उपभोग के प्रति नैतिक दृष्टिकोण विकसित करना भी है। भारतीय आर्थिक चिंतन की जड़ें संयम, संतोष और संतुलित जीवन–शैली में निहित हैं।

ॐईशावास्यमिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥१॥ (ईशावास्य उपनिषद)

यह विचार मेहता जी के सिद्धांत में समाहित है, जिसे उन्होंने वैज्ञानिक और दार्शनिक आधार प्रदान किया। आवेगात्मक खरीद अंधाधुंध उपभोग का प्रतीक है जबकि **तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा** त्यागपूर्वक और संयमित उपभोग की शिक्षा देता है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि आवेगात्मक खरीद क्षणिक सुख के लिए नई–नई आवश्यकताएँ पैदा करती है, जबकि प्रोफेसर जे.के.मेहता का दर्शन बताता है कि वास्तविक सुख वस्तुओं के संचय में नहीं बल्कि इच्छाओं पर नियंत्रण और उन्हें सीमित करने में है।

आज यदि विश्व को जलवायु परिवर्तन और पारिस्थितिक असंतुलन से बचाना है तो संयमित उपभोग और विवेकपूर्ण नैतिक चुनाव आवश्यक हैं। इस प्रकार जे.के.मेहता जी के विचार व्यक्तिगत शांति के साथ–साथ वैश्विक सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भी मार्गदर्शक सिद्ध होते हैं।

मुख्य शब्द (key words) : नैतिक अर्थशास्त्र, सतत उपभोग, जे.के. मेहता, आवेगिक खरीद, अभावहीनता, भारतीय आर्थिक चिंतन, सतत विकास।

परिचय (Introduction)

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्"॥

ईशावास्य उपनिषद का यह सूत्र भारतीय आर्थिक दर्शन की आधारशिला है, जो सिखाता है कि संसाधनों का उपभोग त्याग और संयम की भावना से होना चाहिए। 21वीं सदी में जब वैश्विक अर्थव्यवस्था जलवायु परिवर्तन, संसाधनों के अति–दोहन और पारिस्थितिक असंतुलन जैसी समस्याओं से जूझ रही है तब नैतिक अर्थशास्त्र और सतत उपभोग केवल सैद्धांतिक विचार न रहकर आवश्यकता बन गए हैं।

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)
This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International Public License, which allows others to remix, tweak, and build upon the work noncommercially, as long as appropriate credit is given and the new creations ae licensed under the idential terms.

Address for correspondence:
वीरेन्द्र सिह गुर्जर, दिलीप पीपाड़ा, सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय महाविद्यालय सिरोही

How to cite this article:
गुर्जर, . वीरेन्द्र . सिह ., & पीपाड़ा, . दिलीप . (2026). नैतिक अर्थशास्त्र और सतत उपभोगः विश्लेषणात्मक अध्ययन (जे.के.मेहता के अभावहीनता सिद्धांत के विशेष संदर्भ में). Journal of Research & Development, 18(2(A)), 143–147. https://doi.org/10.5281/zenodo.18934208

Quick Response Code:
Website: https://jrdrvb.org/
DOI: 10.5281/zenodo.18934208
OPEN ACCESS

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-2(A)| February - 2026

पाश्चात्य अर्थशास्त्र जहाँ असीमित आवश्यकताओं और अधिकतम संतुष्टि पर केंद्रीत रहा वहीं भारतीय आर्थिक चिंतन विशेषकर प्रोफेसर जे.के.मेहता का अभावहीनता का सिद्धांत अर्थशास्त्र को नैतिकता और आत्म–संयम से जोड़ता है। यह अध्ययन दर्शाता है कि प्राचीन भारतीय सिद्धांत और मेहता जी के विचार मिलकर **उपयोग करो और फेंको संस्कृति** का विकल्प प्रस्तुत करते हैं तथा सतत उपभोग को पर्यावरणीय ही नहीं बल्कि नैतिक कर्तव्य के रूप में स्थापित करते हैं।

साहित्य समीक्षा (Review of Literature)

समकालीन विमर्श में सतत विकास की आधुनिक परिभाषा का प्रमुख आधार "हमारा साझा भविष्य" (ब्रंटलैंड रिपोर्ट, 1987) है। इस रिपोर्ट ने स्पष्ट किया कि विकास ऐसा हो जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करे, परंतु भविष्य की पीढ़ियों की क्षमता से समझौता न करे। इस दृष्टिकोण ने उपभोग को केवल व्यक्तिगत चयन न मानकर वैश्विक जिम्मेदारी के रूप में स्थापित किया तथा संसाधनों के अनियंत्रित दोहन पर चिंता व्यक्त की।

सतत उपभोग की अवधारणा को आगे बढ़ाते हुए संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) ने यह स्पष्ट किया कि सतत उपभोग का अर्थ केवल कम उपभोग नहीं, बल्कि कुशल और जिम्मेदार उपभोग है। प्रारंभिक साहित्य संसाधनों के भौतिक प्रबंधन, अपशिष्ट प्रबंधन और उपभोग चक्र पर केंद्रित रहा, जिससे गुणवत्ता में सुधार के साथ भविष्य की आवश्यकताओं की सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके।

आधुनिक संदर्भ में आवेगात्मक खरीद (इम्पल्सिव बायिंग) सतत उपभोग के लिए एक बड़ी चुनौती बनकर उभरी है। ई–वाणिज्य और त्वरित संतुष्टि की संस्कृति ने उपभोक्ताओं को भावनात्मक एवं तात्कालिक निर्णय लेने के लिए प्रेरित किया है। इससे न केवल अनावश्यक उपभोग और आर्थिक ऋण बढ़ता है, बल्कि कार्बन पदचिह्न भी बढ़ता है, जो सतत विकास के लक्ष्यों के विपरीत है।

भारतीय आर्थिक चिंतन इस प्रवृत्ति के विपरीत इच्छाओं के संयम पर बल देता है। प्रोफेसर जे.के.मेहता के 'अभावहीनता' सिद्धांत के अनुसार आर्थिक कल्याण वस्तुओं की अधिकता में नहीं, बल्कि इच्छाओं के शमन में निहित है। उनका दर्शन ईशावास्य उपनिषद के संयमित उपभोग के विचार को वैज्ञानिक आधार प्रदान करता है। इसी परंपरा में महात्मा गांधी का न्यासिता सिद्धांत, जे.सी. कुमारप्पा की 'स्थायित्व की अर्थव्यवस्था' तथा पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद संसाधनों के नैतिक और संतुलित उपयोग पर बल देते हैं।

नैतिक दृष्टिकोण से प्रो. अर्मत्य सेन ने अपनी कृति "ऑन एथिक्स एण्ड ईकनामिक्स" में अर्थशास्त्र को नैतिक मूल्यों से पृथक करने की आलोचना की है। उनके अनुसार उपभोग संबंधी निर्णय मानव मूल्यों और न्याय पर आधारित होने चाहिए। इस प्रकार वैश्विक और भारतीय साहित्य यह संकेत देता है कि सतत उपभोग केवल पर्यावरणीय आवश्यकता नहीं, बल्कि एक नैतिक दायित्व भी है।

चर्चा एवं विवेचना (Analysis and Discussion)

आवेगिक खरीद सतत उपभोग के मार्ग में एक मनोवैज्ञानिक बाधा

आवेगात्मक खरीद एक अतार्किक और भावनात्मक प्रक्रिया है, जिसमें उपभोक्ता बिना पूर्व योजना के किसी उत्पाद को तत्काल खरीदने का निर्णय लेता है। इस व्यवहार में व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक स्थिति भावनाएँ सामाजिक तुलना और विपणन रणनीतियाँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उत्साह, तनाव, दुख या उत्तेजना जैसी तात्कालिक भावनाएँ अक्सर अनावश्यक खरीद को प्रेरित करती हैं। आधुनिक डिजिटल युग में इंटरनेट और ई–वाणिज्य के तीव्र विस्तार ने इस प्रवृत्ति को और बढ़ाया है, जिससे उपभोक्ता त्वरित संतुष्टि की संस्कृति के आदी होते जा रहे हैं।

विपणन तकनीकें और डिजिटल मंच उपभोक्ताओं के मनोविज्ञान को प्रभावित कर उनके अंतिम निर्णय पर असर डालते हैं। प्रतिस्पर्धी बाजार में ब्रांड उपभोक्ता के व्यवहार का विश्लेषण कर ऐसी रणनीतियाँ अपनाते हैं, जो भावनात्मक प्रभाव डालकर खरीद को प्रोत्साहित करती हैं। परिणामस्वरूप अनावश्यक संचय बढ़ता है जो सतत उपभोग के लक्ष्य के विपरीत है।

यह प्रवृत्ति न केवल प्राकृतिक संसाधनों पर अतिरिक्त दबाव डालती है बल्कि भविष्य की पीढ़ियों के अधिकारों का भी हनन करती है। बिना आवश्यकता के की गई खरीद उत्पादन उपभोग और अपशिष्ट प्रबंधन की संपूर्ण जीवन–चक्र प्रक्रिया को प्रभावित करती है जिससे पर्यावरणीय संतुलन और सतत विकास के उद्देश्य बाधित होते हैं।

सतत उपभोग

भौतिक संसाधनों के अत्यधिक उपयोग को लेकर चिंता प्राचीन काल से व्यक्त होती रही है। आधुनिक युग में औद्योगिक समाज के बढ़ते उपभोग स्तर की आलोचना 19वीं शताब्दी के विचारकों जैसे Henry David Thoreau, William Morris और Torstein Veblen ने की। वर्ष 1949 में नवगठित United Nations ने संसाधन संरक्षण पर अंतरराष्ट्रीय विमर्श प्रारंभ किया, जिसे 1972 के स्टॉकहोम मानव पर्यावरण सम्मेलन में आगे बढ़ाया गया।

सतत उपभोग की अवधारणा को औपचारिक स्वरूप 1992 के रियो सम्मेलन से प्राप्त हुआ, जहाँ कार्यसूची 21 (एजेंडा 21) मे प्रस्तुत की गई। इसके अध्याय 4 में उपभोग के पैटर्न बदलने और जीवनशैली को पृथ्वी के सीमित संसाधनों के अनुरूप ढालने पर बल दिया गया। 1994 में ओस्लो में गोलमेज सम्मेलन तथा 1995 में सतत विकास आयोग द्वारा उत्पादन और उपभोग पैटर्न पर अंतरराष्ट्रीय कार्य कार्यक्रम शुरू किए गए। 1998 की मानव विकास रिपोर्ट तथा संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की पहलों ने भी सतत उपभोग नीतियों को सुदृढ़ किया।

इन पहलों के बीच सतत उपभोग की परिभाषा को लेकर मतभेद रहे हैं। कुछ विद्वान इसे कम उपभोग के रूप में देखते हैं जबकि अन्य अलग और अधिक कुशल उपभोग पर बल देते हैं। विचारक जैक्सन (2007) के अनुसार इसका अर्थ संसाधनों की उत्पादकता बढ़ाकर सीमित संसाधनों को अधिक उपयोगी आर्थिक वस्तुओं में बदलना है। इस संदर्भ में 2003 में ब्रिटेन की व्यापार सचिव पेट्रिसिया हेविट ने कहा कि **"बढ़ता उपभोग स्वाभाविक है परंतु उसे पर्यावरण–अनुकूल बनाना आवश्यक है"।**

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-2(A)| February - 2026

फिर भी उपभोक्ता व्यवहार में हस्तक्षेप को लेकर संस्थागत झिझक बनी रहती है, क्योंकि उपभोग आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण घटक माना जाता है। आलोचकों का तर्क है कि "सतत उपभोग" की अवधारणा विकासशील देशों के बेहतर जीवन स्तर के प्रयासों को बाधित कर सकती है। किंतु निरंतर आर्थिक विस्तार से वनों की कटाई, वैश्विक तापवृद्धि, समुद्री प्रदूषण और वायु प्रदूषण जैसी समस्याएँ बढ़ी हैं, जो इस बहस को और प्रासंगिक बनाती हैं।

संक्षेप में सतत उपभोग की एक सर्वमान्य परिभाषा पर सहमति बनाना कठिन है, परंतु यह स्पष्ट है कि संसाधनों की सीमितता और पर्यावरणीय क्षति ने इस विषय को नीति–निर्माण के केंद्र में ला दिया है। आर्थिक उपभोग में संसाधनों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष उपयोग होता है, किंतु सभी उपभोग रूप समान रूप से संसाधन–गहन नहीं होते। अतः चुनौती यह है कि विकास और पर्यावरण के बीच संतुलन स्थापित करते हुए अधिक जिम्मेदार और कुशल उपभोग की दिशा में आगे बढ़ा जाए।

विवेकशीलता

पाश्चात्य आर्थिक साहित्य के नियो–क्लासिकल अर्थशास्त्र में यह माना गया कि उपभोक्ता पूर्णतः विवेकशील (Rational) होता है। वह किसी वस्तु को खरीदने से पहले उपलब्ध सभी सूचनाओं का विश्लेषण कर उपयोगिता अधिकतम (Utility Maximization) करने का प्रयास करता है। इस धारणा के अनुसार अधिक वस्तुओं का उपभोग अधिक संतुष्टि देता है, और उपभोक्ता तार्किक आधार पर सर्वोत्तम (Optimal) विकल्प का चयन करता है।

किन्तु व्यवहारिक दृष्टिकोण से विकसित "व्यवहारिक अर्थशास्त्र" (Behavioral Economics) ने इस पारंपरिक धारणा को चुनौती दी। यह शाखा मनोविज्ञान और अर्थशास्त्र के समन्वय से मानव व्यवहार की वास्तविक परिस्थितियों का अध्ययन करती है। इसके अंतर्गत उपभोक्ता की विवेकशीलता को "सीमित विवेकशीलता के रूप में समझाया गया, अर्थात् उपभोक्ता भावनाओं, सामाजिक दबाव, दिखावे तथा तात्कालिक इच्छाओं से भी प्रभावित होता है, जिससे उसका निर्णय पूरी तरह तार्किक नहीं रह जाता।

अमेरिकी विद्वान Herbert A- Simon ने 'सीमित तर्कशीलता' (Bounded Rationality) का सिद्धांत प्रस्तुत किया। उनके अनुसार मनुष्य सुपर–कंप्यूटर नहीं है वह सर्वोत्तम विकल्प के बजाय पर्याप्त रूप से अच्छा विकल्प चुनता है। इसके मुख्य कारण हैं–सीमित जानकारी,मस्तिष्क की सीमित क्षमता और निर्णय लेने के लिए सीमित समय। इसलिए उपभोक्ता का व्यवहार न पूर्णतः तार्किक होता है और न पूर्णतः अतार्किक बल्कि सीमित तर्कशील होता है।

वर्तमान संदर्भ में विक्रेता और उत्पादक विभिन्न विपणन रणनीतियों– जैसे छूट फेस्टिवल सेल,बाय वन गेट वन फ्री,सीमित समय ऑफर आदि का उपयोग कर उपभोक्ताओं की सीमित तर्कशीलता का लाभ उठाते हैं। इससे अनियोजित एवं आवेगपूर्ण खरीद बढ़ती है, और पारिवारिक बजट पर प्रभाव पड़ता है। अतः आधुनिक उपभोक्ता व्यवहार को समझने के लिए सीमित तर्कशीलता की अवधारणा अत्यंत प्रासंगिक मानी जाती है।

जे.के. मेहता का 'अभावहीनता' दर्शन आवेग का समाधान

प्रोफेसर जे.के.मेहता का अभावहीनता का सिद्धांत आवेगपूर्ण खरीद का एक सशक्त नैतिक विकल्प प्रस्तुत करता है। उनके अनुसार सुख इच्छाओं की पूर्ति में नहीं बल्कि इच्छाओं के शमन में है। यदि उपभोक्ता अपनी मानसिक स्थिति को इस दर्शन के अनुरूप ढाल ले तो वह क्षणिक लालसाओं पर नियंत्रण रख सकता है, और उसका उपभोग वास्तविक आवश्यकताओं (Needs) तक सीमित रह सकता है। यही दृष्टिकोण उसे सतत उपभोक्ता बनाता है।

ईशावास्य उपनिषद का मंत्र तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा अर्थात त्यागपूर्वक भोग करो उपभोग की नैतिक सीमा निर्धारित करता है। इसका अर्थ है कि संसाधनों का उपयोग इस भावना से किया जाए कि उन पर भविष्य की पीढ़ियों का भी अधिकार है। यह दृष्टिकोण उपभोक्ता को स्वामी नहीं बल्कि न्यासी मानता है, जिससे आवेगपूर्ण खरीद की प्रवृत्ति स्वतः कम हो जाती है।

नियो–क्लासिकल अर्थशास्त्र जहाँ अधिक इच्छाओं की पूर्ति को व्यक्तिगत संतोष से जोड़ता है वही बौद्ध धर्म की नैतिकता बताती है कि, "असीमित इच्छाओं की पूर्ति सच्चा सुख नहीं देती। अधिक उपभोग व्यक्ति और समाज दोनों के लिए हानिकारक हो सकता है। इसलिए मध्यम मार्ग अपनाकर आवश्यकताओं को संतुलित रखना ही वास्तविक कल्याण का आधार है"।

न्यूरोसाइंटिफिक शोध भी संकेत देते हैं कि एक इच्छा पूरी होने के बाद दूसरी इच्छा जन्म ले लेती है और उपभोग की प्रवृत्ति आदत या लत का रूप ले सकती है, जिसके बाद पछतावा उत्पन्न होता है। अतः नैतिक संयम मध्यम मार्ग और त्याग की भावना ही आवेगपूर्ण उपभोग की समस्या का स्थायी समाधान प्रदान कर सकती है।

सारणी 1 – उत्तरदाताओं की सामाजिक–आर्थिक प्रोफाइल

चर	वर्ग	संख्या	प्रतिशत
लिंग	पुरुष	76	48.1
	महिला	82	51.9
आयु	18 वर्ष से कम	16	10.1
	18–25 वर्ष	142	89.9

निष्कर्ष अध्ययन मुख्यतः 18–25 वर्ष आयु वर्ग के युवाओं पर आधारित है।

सारणी 2 – ऑनलाइन खरीदारी एवं योजना व्यवहार

प्रश्न	हाँ	नहीं	प्रतिशत (हाँ)
ऑनलाइन खरीदारी करते हैं	110	48	69.6
खरीदारी से पहले सूची बनाते हैं	107	51	67.7
सतत उपभोग से परिचित हैं	117	41	74.1

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-2(A)| February - 2026

निष्कर्षः अधिकांश युवा ऑनलाइन खरीदारी करते हैं तथा सतत उपभोग से परिचित भी हैं, परंतु व्यवहारिक स्तर पर अंतर दिखाई देता है।

सारणी 3 – आवेगात्मक खरीदारी की प्रवृत्ति

व्यवहार	कभी नहीं	कभी–कभी	अक्सर(हमेशा)	कुल
सूची से बाहर खरीदारी	30(19 प्रतिशत)	102(64.6 प्रतिशत)	26(16.4प्रतिशत)	**158(100प्रतिशत)**
बिना योजना खरीदारी	37 (23.4 प्रतिशत)	119(75.3 प्रतिशत)	2 (1.9 प्रतिशत)	**158(100प्रतिशत)**
खरीद के बाद पछतावा	29 (18.4 प्रतिशत)	109(69 प्रतिशत)	20 (12.7 प्रतिशत)	**158(100प्रतिशत)**

निष्कर्ष अधिकांश युवा ऑनलाइन कभी – कभी आवेगात्मक खरीदारी करते हैं। परन्तु यही खरीद बाद मे उनके लिए बेकार हो जाती है क्योंकि इस प्रकार की खरीद मे प्रायः वह वस्तु क्रय कर ली जाती है जिसकी उपभोक्ता को बहुत अधिक आवश्यकता नही होती है।

सारणी 4 – प्रेरक कारक एवं दृष्टिकोण

प्रेरक कारक	प्रतिशत
सोशल मीडिया	44.9
त्योहारी ऑफर	25.9
भारी छूट	23.4
दोस्तों का प्रभाव	17.7
प्रचार	14.6

निष्कर्ष अधिकांश युवा सोशल मिडिया से अधिक प्रभावित होकर आवेगात्मक खरीद करते है।इसके बाद विभिन्न कम्पनियों के द्वारा दिया गया त्योहारी ऑफर भी उनकी आवेगात्मक खरीद को बढावा देता है।

संक्षिप्त सांख्यिकीय निष्कर्ष

युवा वर्ग में ऑनलाइन खरीदारी सामान्य व्यवहार बन चुका है। यद्यपि अधिकांश उत्तरदाता सतत उपभोग से परिचित हैं, फिर भी व्यवहार में आवेगात्मक खरीदारी देखी जाती ळें यह स्पष्ट करता है कि ज्ञान और व्यवहार के बीच अंतर (Attitude–Behavior Gap) मौजूद है। प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 18–25 वर्ष आयु वर्ग के युवा ऑनलाइन ई–कॉमर्स प्लेटफॉर्म पर सक्रिय रूप से खरीदारी करते हैं। कुल 69.6 प्रतिशत उत्तरदाता ऑनलाइन खरीदारी करते हैं, जबकि 67.7 प्रतिशत खरीदारी से पूर्व सूची बनाने की बात स्वीकार करते हैं। इसके बावजूद 64.6 प्रतिशत उत्तरदाता "कभी–कभी" सूची से बाहर वस्तुएँ खरीद लेते हैं। यह तथ्य दर्शाता है कि योजनाबद्ध उपभोग के बावजूद आवेगात्मक खरीदारी की प्रवृत्ति विद्यमान है।

प्रेरक कारकों के विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि सोशल मीडिया (44.9 प्रतिशत) सबसे प्रभावशाली तत्व है, जिसके बाद त्योहारी ऑफर एवं मूल्य छूट का स्थान आता है। इससे स्पष्ट है कि डिजिटल मार्केटिंग रणनीतियाँ युवाओं के उपभोग व्यवहार को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रही हैं। विशेष रूप से आकर्षक विज्ञापन, सीमित अवधि की छूट तथा सोशल मीडिया प्रभाव आवेगात्मक निर्णयों को बढ़ावा देते हैं। अध्ययन यह भी दर्शाता है कि 69 प्रतिशत उत्तरदाताओं को बिना योजना खरीदारी के बाद कभी–कभी पछतावा होता है तथा 62 प्रतिशत यह स्वीकार करते हैं कि ऐसी खरीदारी संसाधनों के दुरुपयोग को बढ़ाती है। यद्यपि 74.1 प्रतिशत उत्तरदाता सतत उपभोग की अवधारणा से परिचित हैं, तथापि व्यवहारिक स्तर पर उसका पूर्ण अनुपालन नहीं हो पा रहा है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि युवाओं में सतत उपभोग के प्रति जागरूकता तो है, परंतु डिजिटल प्रभावों एवं आकर्षक विपणन तकनीकों के कारण ज्ञान और व्यवहार के मध्य अंतर (Attitude–Behavior Gap) बना हुआ है। दीर्घकालिक रूप से यह प्रवृत्ति संसाधनों के दुरुपयोग तथा असंतुलित उपभोग संस्कृति को बढ़ावा दे सकती है।

इस प्रकार से प्रस्तुत शोध से स्पष्ट होता है कि सतत विकास केवल आर्थिक या पर्यावरणीय मुद्दा नहीं, बल्कि मानव नैतिकता और व्यवहार से गहराई से जुड़ा प्रश्न है। जलवायु परिवर्तन और संसाधनों का क्षय हमारी आवेगपूर्ण खरीद तथा अनियंत्रित उपभोक्तावादी संस्कृति का परिणाम हैं। इसलिए समस्या का समाधान बाहरी नीतियों के साथ–साथ आंतरिक परिवर्तन में भी निहित है। ब्रंटलैंड रिपोर्ट, 1987 जहाँ संसाधनों के कुशल उपयोग पर बल देती है वहीं प्रोफेसर जे. के. मेहता का अभावहीनता सिद्धांत मानसिक अनुशासन और इच्छाओं के संयम की वकालत करता है। इसी प्रकार ईशावास्य उपनिषद का मंत्र तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा त्यागपूर्वक उपभोग का संदेश देता है, जो आज के डिजिटल युग में भी अत्यंत प्रासंगिक है। भारतीय चिंतकों जैसे महात्मा गांधी, जे.सी.कुमारप्पा और मेहता का विचार है कि आर्थिक विकास का अंतिम लक्ष्य वस्तुओं का संचय नहीं, बल्कि शांति और संतोष की प्राप्ति होना चाहिए। अतः वास्तविक सतत विकास तभी संभव है जब उपभोक्ता के व्यवहार में नैतिक और आंतरिक परिवर्तन आए तथा न्यूनतम संसाधनों से अधिकतम कल्याण की भावना विकसित हो।

सुझाव एवं नीतिगत सिफारिशें

शोध के आधार पर भविष्य के लिए निम्न संक्षिप्त सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं –

- ऑनलाइन बाजार में अपनाई जा रही भ्रामक उपभोक्ता–पैटर्न रणनीतियों पर रोक लगाने हेतु सख्त कानून बनाए जाएँ।
- सरकार और नियामक संस्थाएँ ऐसे विज्ञापनों पर नैतिक नियंत्रण लगाएँ जो उपभोक्ताओं को आवेगपूर्ण खरीद के लिए उकसाते हैं, तथा मार्केटिंग नीतियों में सतत उपभोग का संदेश अनिवार्य किया जाए।
- उपभोक्ता ऑनलाइन या ऑफलाइन खरीद से पहले आवश्यक वस्तुओं की सूची बनाकर ही बाजार जाएँ, ताकि अनियोजित खर्च कम हो।

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-2(A)| February - 2026

- आवश्यकताओं की साप्ताहिक और मासिक प्राथमिकता सूची तैयार कर बजट के अनुरूप खरीदारी की आदत विकसित की जाए।
- भारत सरकार को पर्यावरण संरक्षण अभियानों को प्रोफेसर जे.के. मेहता के अभावहीनता सिद्धांत से जोड़कर वैश्विक स्तर पर प्रचारित करना चाहिए, ताकि भोगवाद और यूज एंड थ्रो संस्कृति पर अंकुश लगे।
- न्यूनतम संसाधनों से टिकाऊ उत्पाद बनाने वाली कंपनियों को कर में छूट और प्रोत्साहन दिया जाए।
- विद्यालय और उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में प्रोफेसर जे.के. मेहता तथा महात्मा गांधी के आर्थिक विचारों को सतत विकास के साथ समाहित किया जाए जिससे युवाओं में जिम्मेदार उपभोग के संस्कार विकसित हों।
- उपभोक्ता शिक्षा को बढ़ावा दिया जाए युवाओं में सतत उपभोग (Sustainable Consumption) के व्यवहारिक पहलुओं पर कार्यशालाएँ, सेमिनार एवं जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ।
- डिजिटल साक्षरता का विकास सोशल मीडिया एवं ई–कॉमर्स प्लेटफॉर्म पर चलने वाली मार्केटिंग रणनीतियों को समझाने हेतु विशेष प्रशिक्षण दिया जाए, ताकि युवा आकर्षक ऑफरों के प्रभाव में आवेगात्मक निर्णय न लें।
- खरीदारी सूची और बजट प्रणाली को प्रोत्साहन विद्यार्थियों को मासिक बजट बनाने एवं सूची आधारित खरीदारी की आदत विकसित करने के लिए प्रेरित किया जाए।
- स्व–नियंत्रण (Self&Control) तकनीकों का अभ्यास दृ "24 घंटे का नियम" (तुरंत खरीदारी न करके एक दिन का अंतराल) जैसी तकनीकों को अपनाने के लिए प्रेरित किया जाए।
- पर्यावरणीय प्रभाव की जानकारी दृ यह समझाया जाए कि अनावश्यक उपभोग प्राकृतिक संसाधनों के दुरुपयोग और पर्यावरणीय असंतुलन को बढ़ाता है।

नीतिगत अनुशंसाएँ (Policy Recommendations)

- ई–कॉमर्स प्लेटफॉर्म पर पारदर्शिता सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि ऑनलाइन प्लेटफॉर्म "भ्रामक छूट" (Misleading Discounts) या कृत्रिम तात्कालिकता (Artificial Urgency) न दिखाएँ।
- सतत उत्पादों को बढ़ावा पर्यावरण–अनुकूल एवं टिकाऊ उत्पादों पर विशेष प्रोत्साहन दिए जाएँ।
- शैक्षणिक पाठ्यक्रम में समावेशन विद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर पर "सतत उपभोग और जिम्मेदार उपभोक्ता व्यवहार" को पाठ्यक्रम का भाग बनाया जाए।
- डिजिटल विज्ञापन विनियमन युवाओं को लक्षित अत्यधिक आक्रामक विज्ञापनों पर निगरानी रखी जाए।
- जन–जागरूकता अभियान सरकार एवं गैर–सरकारी संगठनों द्वारा संसाधन संरक्षण और विवेकपूर्ण उपभोग के लिए व्यापक अभियान चलाए जाएँ।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि समकालीन उपभोक्तावादी व्यवस्था में आवेगात्मक खरीदारी एक गंभीर आर्थिक एवं नैतिक चुनौती के रूप में उभर रही है। 18–25 वर्ष आयु वर्ग के युवाओं पर आधारित सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि यद्यपि अधिकांश उत्तरदाता सतत उपभोग की अवधारणा से परिचित हैं, फिर भी व्यवहारिक स्तर पर वे सोशल मीडिया, त्योहारी ऑफर तथा भारी छूट जैसी विपणन रणनीतियों से प्रभावित होकर सूची के बाहर वस्तुएँ खरीद लेते हैं। यह स्थिति ज्ञान और व्यवहार के मध्य विद्यमान अंतर (Attitude–Behavior Gap) को दर्शाती है। आवेगात्मक उपभोग न केवल व्यक्तिगत आर्थिक संतुलन को प्रभावित करता है, बल्कि प्राकृतिक संसाधनों के अति–दोहन, पर्यावरणीय असंतुलन और अस्थिर विकास को भी बढ़ावा देता है।

इस संदर्भ में जे.के.मेहता का 'अभावग्रस्तता सिद्धांत' एक वैकल्पिक नैतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो उपभोग की वृद्धि के स्थान पर इच्छाओं के संयम और मानसिक संतोष पर बल देता है। इसी प्रकार Isha Upanishad का मंत्र **"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा"** त्यागपूर्वक एवं संयमित उपभोग की शिक्षा देता है। अध्ययन का समग्र निष्कर्ष यह है कि सतत विकास केवल नीतिगत सुधारों से संभव नहीं, बल्कि उपभोक्ता के आंतरिक नैतिक परिवर्तन, आत्मसंयम और विवेकपूर्ण चयन से ही साकार हो सकता है। अतः आर्थिक प्रगति का वास्तविक लक्ष्य वस्तुओं का संचय नहीं, बल्कि संतुलित, जिम्मेदार और नैतिक उपभोग संस्कृति की स्थापना होना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Isha Upanishad (2021). Mantra 1 (H. K. Goyandaka, Trans.). Gita Press.
2. Brundtland, G. H. (1987). *Our Common Future*. World Commission on Environment and Development.
3. Herbert A. Simon (1997). *Administrative Behavior* (4th ed.). Free Press.
4. J. K. Mehta (1962). *Rhyme, Rhythm and Truth in Economics*. Asia Publishing House.
5. J. C. Kumarappa (1945). *Economy of Permanence*. Sarva Seva Sangh.
6. Rook, D. W. (1987). "The Buying Impulse." *Journal of Consumer Research*, 14(2).
7. Amartya Sen (1987). *On Ethics and Economics*. Blackwell; (1999). *Development as Freedom*. Oxford University Press.
8. Mahatma Gandhi (1948). *Hind Swaraj*. Navajivan Publishing House.
9. UNEP (2001). *Sustainable Consumption: A Global Status Report*.
10. E. F. Schumacher (1973). *Small Is Beautiful*.